IJAER/May-June 2015/Volume-4/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

नन्द किशोर नवल और काव्यालोचनाओं का नया प्रतिमान

कुमारी शालिनी

शोधार्थी, हिंदी विभाग

(अनुक्रमांक- 140902)

सत्र: 2014-2015

बाबा साहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सार

डॉ. नन्द किशोर नवल के आलोचना ग्रंथों में काव्य कविता पर की गयी आलोचना मुख्य है। नवल जी का समस्त लेखन एक निश्चित ऐतहासिक आवश्यकता की उपज है। वह उस श्रेणी के स्तम्भकार है जिन्होंने अपना कार्य प्राचीन साहित्य पर करने के वाबजूद समकालीन साहित्य के प्रति एक गहरी आत्मनिष्ठा प्रदर्शित किया है। ऐसे में उनकी प्रत्येक कृति का एक निश्चित साहित्यिक संदर्व है. नवल जी इन आलोचनात्मक रचनाओं के परिप्रेक्ष्य को यूँ स्पष्ट करते हैं। कवि कई तरह के होते हैंय कुछ कवि भावना के साथ ज्ञान को भी महत्व देते हैं, कुछ जितना भावना को महत्व देते हैं, उतना ज्ञान को नहीं। इस संदर्व में यदि हम हिंदी कवियों का ही उदाहरण लें तो पाएंगे कि यहाँ प्रथम कोटि में कबीरदास और तुलसीदास थे, जबकि दूसरी कोटि के कवि में सूरदास का नाम लिया जा सकता हैं। आधुनिक काल में जयशंकर प्रसाद जैसे ज्ञानवान–प्रखर कवि मिले वहीँ महादेवी वर्मा जैसी भावुक कवयित्री भी मिलीं। वस्तुतः यह कवि के अंतर्मन की बनावट पर निर्भर हैं कि वह आगे युग कि समस्याओं को कैसे ग्रहण करेगा– सिर्फ भावना एवं कल्पना के द्वारा या इसके साथ–साथ बुद्धि के भी द्वारा। इसे समझने में वह केवल अपनी अंतरदृष्टि का इस्तेमाल करेगा या अपनी विश्व–दृष्टि से भी समझने का प्रयत्न करेगा। अतः कविताओं के परिप्रेक्ष्य में संवेदना के साथ ज्ञान भी अति–महत्वपूर्ण हैं।ऐसे में नवल जी ने इस तथ्य को यूँ विवेचित किया है, कविता में सहज नियम है कि कवि के ह्रदय का काव्य पर और काव्य का कवि के ह्रदय पर अन्तःसम्बन्ध कार्य कारण की रीति पर बराबर चला आता है। तब यह मानना ही पड़ेगा की आदि में ह्रदय में ऐसी भावना हुई उस ऐसा काव्य उत्पन्न हुआ। एक बार यह नियम कर लिया जाये की जिस समय जो भावना मन में उठै, उसी पर काव्य लिख जाएँ और

नियमबद्ध होने की कैद उठा दी जाये।'' कवि को अपने भीतर एक विश्व–दृष्टि का विकास करने की जरुरत हैं। मौलिक दृष्टिकोण, वैचारिक संघर्ष, सृजनात्मक भाषा एवं स्पष्ट विवेचना की प्रगाढ़ता ने उनकी आलोचनाओं को समकालीन लेखन का दिशानिर्देश किया।

भूमिका

नवल जी की वैचारिक तेजस्विता मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना में स्पष्टतया दृष्टिगत होती हैं। मुक्तिबोध के बारे में विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष को रेखांकित किया हैं। कविता की आदर्श स्थिति होती हैं कि विश्व–समस्या व्यक्ति–समस्या बनकर उपस्थित हो। मुक्तिबोध उनकी नजर में यथार्थवादी कवि थे, आत्मपरक नहीं। किन्तु उनका आग्रह विश्व समस्या के चित्रण पर था। सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में उनका संघर्ष नई कविता के उस सौंदर्यशास्त्र के विरुद्ध निर्दिष्ट हैं जिसके प्रभाव में उसमे मात्र संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं की कवितायेँ हैं। उन्होंने व्यक्तिबद्ध पीड़ाओं से हटकर की गयी कविताओं की रचना को महत्व दिया और उसी में सौंदर्य की स्थिति बतलायी। सौंदर्य के साथ सम्बन्ध पर उनका विशेष बल था। उनकी मान्यता थी कि किसी भी काव्य को अच्छी तरह से समझने के लिए उसकी सृजन–प्रक्रिया को समझना आवश्यक होता है। इस क्रम में इन सृजन–प्रक्रियाओं पर भी उन्होंने काफी कुछ लिखा जो उनकी अपनी सृजन–प्रक्रिया से तो परिचित करवाते ही हैं, किसी हद तक यथार्थवादी कविता के सृजन प्रक्रिया पर भी नजर डालते हैं। कबीर की तरह मुक्तिबोध भी विद्रोही परंपरा के कवि थे। उनका विद्रोह उनकी मार्क्सवादी विश्व–दृष्टि का देन था और इसमें कोई संशय नहीं कि वह बहुत ही दृढ एवं सुसंगत मार्क्सवादी थे। किन्तु यह बात भी हैं कि उनका मार्क्सवाद यांत्रिक एवं संकीर्णतावादी न हो कर विकासमान एवं सृजनात्मक हुआ करता हैं।समीक्षा करते हुए डॉ. नवल ने लिखा है, इन कविताओं की सीमा यह है कि इनमें राजनीति और क्रांति की चेतना प्रायः भावना के स्तर पर है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति भी प्रायः भावनात्मक ढंग से ही हुई है। स्वभावतः अभिव्यक्ति के अधिकांश उपादान वही हैं, जो छायावादी कविता में काम में लाये जाते थे– बदल, बिजली, तूफान आदि। इन उपादानों का उपयोग भी कवि ने छायावादी ढंग से ही किया हैं, यानि अप्रस्तुतों के रूप में। यह जरूर हैं कि उनके संयोजन में कुछ ऐसी विशेषता हैं, जिससे पुराने उपादानों से भी अनेक बार नई आभा से युक्त चित्रों कि सृष्टि हुई हैं।'' उन्होंने विश्वदृष्टि को अपने अनुभव के योग से विकसित करने की बात कही, अर्जित करने की नहीं।

इन आलोचनाओं के क्रम में इनका मत है कि कविता के रचना के परिप्रेक्ष्यों को आलोचकों ने महत्व नहीं दिया जिससे आलोचना कवि–केंद्रित हो गयी। वहीं कविता के शीर्षक परिवर्तनों ने भी एक हद तक आलोचकों को भ्रमित किया। कविता का सार व्यक्ति से शुरू हो, कोई दिक्कत–समस्या नहींय किन्तु व्यक्ति के आत्म–संघर्ष का सुदृढ़ सामाजिक सन्दर्भ थोड़ा आगे बढ़ कर सामने आना आवश्यक हैं। मुक्तिबोध की श्अँधेरे मेंश में एक फासीवादी हुकूमत की परिस्थिति में एक सचेत और प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आत्मसंघर्ष दर्शाया गया हैं। नवल जी ने अस्तित्ववाद की मान्यता के बारे में श्जन–भयश और श्जन–घृणाश शब्द का इस्तेमाल किया हैं। जनता क्या हैं एक भीड़ हैं और भीड़ की कोई स्वयं की आत्मा

नहीं होती। यह एक अंजनी या सामूहिक उत्तेजनाओं में कार्य करती हैं। वह किसी एकांत चिंतन के द्वारा या अपनी बुद्धि क्षमताओं से सोच–विचार कर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचती हैं, क्यूंकि उसमे आत्मा का अभाव हैं। यह केवल आत्मतंत्र का एक प्रमाण हैं। व्यक्ति मूलतः आत्मतंत्री होता हैं, अद्वितीय होता है। मनुष्य की सृजनशीलता अपनी अद्वितीयता की रक्षा से उत्पन्न होती हैं और इससे ही वह आत्मतंत्री हो सकता हैं। इस तरह जो व्यक्ति अपनी अद्वितीयता की रक्षा करता हैं उसमे सृजनशीलता पाने की ललक हैं। ऐसे में निष्कर्ष तो यही आता हैं कि सृजनकाल में ही मानव कि सच्ची मुक्ति हैं या उसकी पूर्ण आत्मपूर्ति हैं। मानवतावादी लेखों में उनकी टिप्पणी सटीक होती हैं कि ऐसी भाव–धारा नितांत प्रक्रियावादी हैं। इसके सारे आघात का मुख्य लक्ष्य कवि–रचनाकार–कलाकार को समाज से सामाजिक मानवीय भावनाओं से, सामाजिक–मानवीय मूल्यों से, सामाजिक–मानवीय लक्ष्यों से एवं इसके भावनाओं के स्वप्न–लक्ष्य से एक पृथक निःसंग विरोधात्मक रूप में स्थापित करना हैं।

नन्द किशोर नवल और काव्यालोचनाओं का नया प्रतिमान

डॉ. नवल की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना है– श्कवितारू पहचान का संकट'। कविता के लुप्त होते पहचान की स्थितियों को उन्होंने अपनी दृष्टि से समेकित करने की कोशिश की है। इसमें कबीर से लेकर एकदम हाल के कवियों तक की कविताओं पर इसमें निहित कवित्व को यथासंभव सांकेतिक करने का प्रयास उन्होंने किया हैं। तुलसीदास के शब्दों में,

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी, गति न जाई अस अद्भुत वाणी

इसे नवल जी ने इस प्रकार समझाया हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कवित्व एक गतिशील वास्तु तो है ही दुर्ग्राह्य भी। आलोचना में रचना के कवित्व या सौंदर्य की पहचान रूपवाद हैं, यह एक गलतफहमी हो सकती है। सच तो यह हैं कि कवित्व का सौंदर्य अलग से कोई वास्तु नहीं हैं, ठीक सूर्य के किरण कि तरह जिसे हम नहीं देखा करते। दखते है तो उनसे होने वाले प्रकाशित वस्तुओं को, परन्तु इसका मतलब यह भी नहीं कि प्रकाश किरण जैसी कोई भी चीज नहीं हैं इस दुनिया में एवं जो भी हैं केवल वह उससे प्रकाशित वस्तु ही।''

डॉ. नवल जी ने राष्ट्रवादी कविताओं भावनाओं पर स्वतंत्रता पुकारती लिखा है.यह 23 कविओं की 173 कविताओं का समागम है, जिसे नवल जी ने पांच खण्डों में विभाजित किया है। इन पांचों खण्डों का संकलन क्रमशः हिंदी कविता के पांच युगों अथवा धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, स्वछन्द युग, छायावाद और छायावादोत्तर युग है। इसमें हिंदी कवियों–कवयित्रियों की राष्ट्रिय भावना की मोटा–मोटी तीन मंजिलें दृष्टि हैं। प्रथम मंजिल देशभक्ति है, जिसमे राजभक्ति की बू आती दिखाई देती है वहीं दूसरी स्वातन्त्र चेतना है। इसी में वर्ग–चेतना का समावेश अधिक हो गया है। तीनों मंजिलें समय – कुसमय एक दूसरे को संक्रमित कर जाती हैं। हिंदी की राष्ट्रवादी कविताओं में एक कमी या विशेषता है, वह है– देशभक्ति के आवेश का विषय बन जाना। कवि जिस भी वस्तु का वर्णन करे, राष्ट्र के प्रति उसकी

गहन प्रेमानुभूति छलकती चलती है। इस भक्ति से देशभक्ति तक और व्यक्तिक मुक्ति से राष्ट्रमुक्ति तक हिंदी कविता की ऐसी यात्रा एक बड़ी प्रगति का परिचायक है।

जब देश अभी–अभी अपनी आजादी का अमृत–महोत्सव मना चूका है। ऐसे में यह जानने की इच्छा स्वाभाविक है कि पचहत्तर वर्षों पूर्व मिले उस आजादी में हिंदी कविता का क्या योगदान रहा। स्वतंत्रता–आंदोलन में योगदान का तो महत्व है ही, इस बात का भी महत्व है कि राष्ट्रीयता की चेतना कविता में अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। इससे सर्वाधिक फायदा स्वयं कविता को मिला जिससे वह अत्यंत समृद्ध हुई। उसे भाषा से भाव तक का नवीन विस्तार प्राप्त हुआ एवं वह असंख्य भास्वर छवियों से जगमगा उठी। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदी की राष्ट्रिय कविता के रचयिताओं ने अपनी राष्ट्रिय भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त किया है, किसी दल विशेष की नीति और कार्यक्रम के अनुसार नहीं।

स्वतंत्रता पुकारती काव्य–संग्रह के संकलन के क्रम में नवल जी के सामने एक द्वंद समस्या भी दृष्टिगत हुई किन्तु इस सबसे परे हटकर उन्होंने उन्ही कवियों का चुनाव किया जो हिंदी के श्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि कवि हैं।

विभिन्न समीक्षकों ने कविता लेखन के उद्देश्यों का अन्वेषण किया है एवं साथ ही साथ उनके साधनों एवं उद्‌गम के कारणों का भी खोज करने का प्रयास किया है। इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि कविता का आरम्भ मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ क्योंकि मानव का आदिम–समाज सामान्य भावनाओं से मुक्त था। मानव श्रम का अधिकांश क्रियाकलाप स्वतः प्रेरित न होने की वजह से उसके कार्यरत होने के लिए किसी प्रेरणा स्रोत की आवश्यकता होती है। लय–युक्त अपरिष्कृत भाषा में रचित–काव्य सामूहिक भाव को गठित करके उसे उपयोगी दिशा में प्रवृत करने का प्रमुख साधन सिद्ध होता है। निराला से प्रेरित डॉ. नवल ने श्उर्वशीश को संदर्भित करते लिखा है, कवि के व्यक्तव्य में, जो आत्मकथ्य, साक्षात्कार आदि रूपों में भी हो सकता हैय कभी–कभी उसकी कविता से बाहरउसके सम्बन्ध में कही गयी बातें उसे समझने में जितनी मददगार हों, उन्हें कविता की क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं होना चाहिए।

दिनकर ने स्वातंर्त्य, सौंदर्य, शौर्य जैसी अवधारणों को राष्ट्रवादी दृष्टि से पर्दापाश करते हुए अपनी अद्वितीय काव्य शैली में पिरोया है। डॉ. नवल ने खुद बताया है कि दिनकर की कविता विश्लेषण का विशेष अवसर नहीं देतीं। रश्मिरथी में कवि ने हिंदी काव्य की एक परंपरा का पालन तो किया ही है। उसके माध्यम से उसने अपनी ह्रदय के साथ सम्पूर्ण कलातीतों में पाठकों के ह्रदय को आसानी से मिला दिया है

डॉ. नवल ने रश्मिरथी का एक आरम्भिक छंद को रेखांकित किया जिसमें इस सर्ग की अंतर्वस्तु भी संकेतित होती है–

जय हो जग में जले जहाँ भी नमन पुनीत अनल को,

जिस नर में भी बेस, हमारा नमन तेज को बल को,

किसी वृन्त पर खिले विपिन में पर नमस्य है फूल,

सुधि खोजते नहीं गुणों का आदि शक्ति का मूल।

दिनकर रचित रश्मि–रथी की उक्त पंक्तियों से आम जनमानस का लगाव कितना गहरा हैं, इसे नवल जी ने संदर्भित किया हैं, यह छंद दिनकर के गृह जिले बेगूसराय में इतनी प्रचलित हुई कि बुद्धिजीवी युवाओं ने हर धरना व् शांतिपूर्ण प्रदर्शनों में इसका सहारा लिया। वहीँ इकबाल का प्रसिद्ध हिंदी तराना श्सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा, हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्ता हमाराश के गवाह स्वयं रहे जब 1984 के सिख विरोधी दंगों के विरोध में पटना में शांति मार्च करते हुए प्रगतिशील मनोवृति के लड़कों ने इसे गाते हुए पटना सिटी गुरुद्वारा तक जुलूस निकला। दोनों ही अवसरों पर मैं प्रत्यक्षदर्शी था और मेरे मन में एक ही भाव उठा था कि जिस कवि की कविता को जन–साधारण इस तरह गाता हैं, वह कवि धन्य हैं न इकबाल के श्रेष्ठकवि होने में लोगों को संदेह हैं, न दिनकर के श्रेष्ठ कवि होने में''

नवलजी ने दिनकर कि उर्वशी कि समकालीनता की समीक्षा करते हुए कहा हैं कि यह दिनकर काव्य का सर्वोच्च शिखर तो हैं हीय अपितु वह समग्र आधुनिक हिंदी–कविता का एक अत्युच्च शिखर भी हैं। जिनके द्वारा वह हिंदी के प्रथम श्रेणी के आधुनिक कवियों के साथ पांक्तेय हो गए हैं। वस्तुतः समकालीन वही नहीं हैं जो समकालीन की तरह लगता हैं, बल्कि जिसे समझने की जरुरत हैं और अमल में लाने की भी। श्दिनकर अर्धनारीश्वर कविश में नवल जी ने श्उर्वशीश के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रेम, दाम्पत्य, साहचर्य भाव, गृहस्थ–जीवन, मातृत्व एवं वात्सल्य जैसे चिरपोषित मूल्यों पर उपस्थित संकट का चित्रण किया हैं। नवल जी ने अपनी इसी रचना में दिनकर के कुरुक्षेत्र पर श्कौन रोता हैं वहाँ इतिहास के अध्याय परश के माध्यम से इस काव्य को विचार काव्य कहा हैं। हालाँकि इसमें विचार भी एक अनुभूति बनकर आये हैं

हिंदी आलोचना आज एक समृद्ध गद्द–विधा के रूप में स्वीकृत हैं। हिंदी में एक विधा के रूप में उपन्यास के जन्म को भले ही पश्चिमी साहित्य के रूप से कोई परिघटना माना जाये किन्तु कथा अथवा कहानी के बारे में ऐसा मानना सर्वथा अनुचित हैं। हिंदी साहित्य में प्रथम कथा या गद्द होने का श्रेय किस रचना को दिया जाए इस पर पर्याप्त चर्चा हुई है, लेकिन कथालोचना के क्षेत्र में किये गए प्रारंभिक प्रयासों के बारे में कुछ भी चर्चा कर पाना आज भी मुश्किल है। इसका कारण एक लम्बे समय तक हिंदी की रचनाशीलता के केंद्र में कविता का होना है जिस कारण ज्यादा सुसंगत विकासक्रम काव्यालोचना का ही मिलना है। कुछ विद्धानों के द्वारा यह चर्चा की जाती हैं कि आज का साहित्य अपने आधुनिक युग के संक्रांति–काल में आ चूका हैं, अर्थात– नई एवं पुराणी पीढ़ी के बीच परिवर्तनशीलता के संघर्ष का दौर। इस कारन साहित्य के भीतर एक तनाव सा पैदा हो गया हैं। नवल जी ने विश्लेषणोपरांत अपना तर्क दिया हैं, बढ़ते हुए संघर्ष के कारण साहित्यकार के आगे अनेक समस्याएं खड़ी हो गयी हैं और होती ही जाएँगी। ये समस्याएं सबकी सब साहित्यिक नहीं होंगी। यदि साहित्यकार औसत से अधिक जाग्रत मानव है, तो अन्य प्रकार की समस्याएं भी उसके आगे अधिक तीव्र हो कर जाएँगी। पर जो विशेष रूप से साहित्यिक समस्याएं हैं, वे अन्य व्यक्तियों के लिए उतना तात्कालिक महत्व नहीं रखेंगी, बल्कि अधिकांश को समस्याएं ही जान पड़ेंगी। तथापि साहित्य के लिए इन समस्यायों का सामना करना एक तात्कालिक कर्तव्य है।''

डॉ. नन्द किशोर नवल अपने सुदीर्घ लेखन में आलोचना को एक समावेशी दृष्टि से मंडित किया तथा प्रगतिशील लेखकों के साथ–साथ गैर–प्रगतिशील रचनाकारों पर भी उदारता से विचार किया। लगभग छः दशकों तक हिंदी साहित्य के लगभग हर पहलुओं को अपनी आलोचना की आँखों से बारीकी–पूर्वक देखने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व का प्रबल–पक्ष स्पष्ट दीखता है, जिसमें उन्होंने कहीं कोई शिगूफे नहीं छोड़े एवं हमेशा एकजुटता से आलोचना–कर्म किया है। अपने हर उत्तरदायित्व का निर्वाह उन्होंने बहुज्ञता के साथ कृतियों एवं कृतिकारों को पढ़ते समझते हुए सहृदयता–पूर्वक विवेचना किया है।

नवल जी ने आलोचना में अपने गुरु रामविलाश शर्मा का भली–भांति अनुसरण किया है। साहित्यिक प्रतिश्रुतियों के चयन में उन्होंने विचारधारा से कदाचित समझौता भी संभव किया है। यद्दपि उनपर मार्क्सवादी आलोचना की विचारधारा का टैग ताउम्र लगा रहा। वे जिस समृद्ध साहित्यिक परंपरा से हो कर निकले थे उसे किसी भी हालत में छोड़ना नहीं चाहते थे। एक उत्तर–छायावादी दौर में पले–बढे एवं अपनी परंपरा के सभी जाने–माने लेखकों को गहरे अध्ययन करते हुए कालांतर में आलोचनाओं के प्रति जो उनका रुझान पैदा हुआ वह जीवन पर्यन्त बना रहा।

एक आलोचक के रूप में उन्होंने हिंदी आलोचना का विकास पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिख कर हिंदी आलोचना की सुदृढ़ परंपरा एवं उसकी कृति लेखकों के आलोचनात्मक अवदान के विकासक्रम को स्थापित किया। ऐसा इतिहास लेखन तथा आलोचना के समुचित मूल्यांकन नवल जी जैसा ही साहित्य के धरातल से जुड़ा व्यक्ति ही कर सकता है।

सम्प्रेषणीयता एवं भावयित्री प्रतिभा का समुचित प्रयोग

इस हिंदी साहित्य जगत में हर लेखक, कवि–रचनाकार चाहता है कि उस पर भी कुछ लिखा जाये और उसकी भी कृतियों की चर्चा हो। परन्तु विडंबना यह है कि वे आलोचक को कोई सम्मानजनक भाव देते नहीं दीखते हैं। आलोचकों को ले कर इस तरह की धारणा आये दिन बहुधा देखने को मिलता रहता है किन्तु आलोचक के अवदान पर ढंग की स्वतंत्र कृति बहुधा कम ही देखने को मिलती है। उदहारण के लिए नामवर सिंह के बारे में अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने अपने अनेकों अंकों में काफी कुछ लिखा किन्तु सृजनात्मक लेखकों के वनिस्पत उन पर कम ही शोध किया गया है तथा पुस्तकें भी अल्प मात्रा में ही उपलब्ध हैं। वहीँ यदि हम नजर उठा कर उनके समकालीन अन्य सृजनात्मक कवियों– रचनाकारों की बात करें तो पाएंगे कि इन लोगों पर तमाम किताबें उपलब्ध हैं।

नवल जी जैसे लेखक का निज का मतलब क्या होता है, यह तो उनके विवेचना की विपुल दुनिया को साहित्य के पटल पर रख कर ही देखा जा सकता है। अपने सुदीर्घ लेखन काल में उन्होंने अपना एक संस्मरण लिखा, जो मूरतें माटी की और सोने की के नाम से प्रकाशित हुईं। ऐसा कहा जाता है कि आलोचक का गद्द रुक्ष होता है किन्तु अपनी इस पुस्तक संस्मरण के माध्यम से नवल जी ने सिद्ध किया है कि वह इस नाजुक साहित्य विधा के साथ केवल न्याय के पक्ष में ही खड़े रहेंगे। इसी पुस्तक के दूसरे खंड में उन्होंने हिंदी के पांच बड़े लेखकों नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, नलिनविलोचन शर्मा एवं नामवर सिंह पर संस्मरणात्मक लेख लिखा है एवं रचना वैशिष्ट्य का विवेचन भी किया है।

आलोचना में जहाँ आलोचक को वस्तुनिष्ठ होना होता है वहीं कृति संस्मरण में उसे छूट होती है कि वह किसी कवि या लेखक की किन बातों को विशिष्टता देता है। उनकी जीवन की इस समावेशिता के लिये उपयुक्त उपमानों का मिलना कठिन हो जाता है।

निष्कर्ष

नवल जी ने आलोचनात्मक लेखन के अलावा श्ध्वजभंगश, श्सिर्फश, धरातलश, श्आलोचनाश, श्कसौटीश आदि कुछ चुनिंदे पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। आलोचना में उनकी पहचान यूँ तो पहले से ही थी पर नामवर जी के साथ सह–संपादक का कार्यभार सँभालने के बाद उनकी रचनाओं की विशेष पहचान मिलनी शुरू हुई। वास्तविक तौर पर इस पत्रिका में संपादक की रणनीतिक शैली को अंजाम देने का काम लगभग वही करते रहे। इस कार्य में लेखकों की नाराजगी भी यदा–कदा नवल जी को झेलनी पड़ी। किसी भी समीक्षक की समीक्षा दृष्टि उसके व्यक्तित्व के आधार पर निर्मित होती है। आलोचक के व्यक्तित्व–निर्माण में प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास इस तीन तत्वों को अनिवार्य माना गया है। संस्कृत कवि राजशेखर के अनुसार, रचनाकार की इस प्रतिभा को भी दो प्रकार में विभाजित किया गया है– कारयित्री एवं भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा जन्मजात होती हैं तथा इसका संबंध कवि से होता है, जबकि भावयित्री प्रतिभा का संबंध सहृदय पाठक या आलोचक से है। एक समीक्षक में भावयित्री प्रतिभा अपेक्षित होती है और उसी भावयित्री प्रतिभा से प्रेरित हो कर समीक्षक किसी भी साहित्य में सन्निहित भाव व विचार के मूल्यांकन में रूचि लेता है।''

यह दर्शाने की आवश्यकता नहीं कि नवल जी की आलोचनाओं में यह भावयित्री प्रतिभा अति समृद्ध है, जिस कारण वह समीक्षात्मक क्षेत्र के एक पथ–प्रदर्शक एवं स्वतंत्र पथ निर्माता साबित हुए। आलोचना को लेकर अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए नवल जी ने अपनी श्समकालीन काव्य यात्राश में लिखा है, इतना अवश्य मानने लगा हूँ कि प्रत्येक श्रेष्ठ रचनाकार की अपनी एक विशेष दुनिया होती है। उसकी अपनी दुनियाँ की टकराहट किसी दूसरे रचनाकार की दुनियाँ से हो ही सकती है बल्कि उस दुनियां को जांचने के नियम भी दूसरे लेखकों की दुनियाँ के नियमों से भिन्न हो सकते हैं। इनमें अंतर्विरोध दिखलाई पड़ सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं कि यह अंतर्विरोध गहराई में भी बरकरार रहे।''

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1. हिंदी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2017

2. दिनकररू अर्धनारीश्वर कवि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2013

3. मुक्तिबोधरू ज्ञान और संवेदना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2010

4. समकालीन काव्य यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2004

5. हिंदी साहित्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2003

6. प्रेमचंद का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2007

7. शब्द जहाँ सक्रीय हैं, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली 1986

8. कविता पहचान का संकट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2006